International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

मौर्योत्तर कालीन आर्थिक व्यवस्था एवं केंद्रीय प्रशासनः एक ऐतिहासिक अध्ययन

संतरा देवी
शोधकर्त्री इतिहास एंव पुरातत्व विभाग चौधरी देवीलाल विश्वविद्यालय, सिरसा
डॉ॰ नीलम रानी सहायक आचार्या
शोध निर्देशिकाः इतिहास एंव पुरातत्व विभाग चौधरी देवीलाल विश्वविद्यालय, सिरसा
प्रोफेसर विष्णु भगवान
लोक प्रशासन विभाग चौधरी देवीलाल विश्वविद्यालय, सिरसा

भूमिका

मौर्य साम्राज्य के पतन के उपरान्त भारतीय उपमहाद्वीप की राजनीतिक संरचना में व्यापक परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। लगभग द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व से तृतीय शताब्दी ईस्वी तक का काल भारतीय इतिहास में "मौर्योत्तर काल" के रूप में जाना जाता है। इस युग की प्रमुख विशेषता राजनीतिक विकेन्द्रीकरण तथा क्षेत्रीय शक्तियों का उदय था। मौर्यों द्वारा स्थापित अखिल भारतीय राजनीतिक एकता के विघटन के पश्चात् भारत अनेक छोटे-बड़े राज्यों में विभाजित हो गया। उत्तर भारत में शुंग, कण्व, शक तथा कुषाण शासकों ने अपनी सत्ता स्थापित की, जबकि दक्षिण भारत में सातवाहनों का प्रभाव विद्यमान रहा। इसी प्रकार चोल, पाण्ड्य एवं केरल के राज्य दक्षिणी भारत की राजनीतिक व्यवस्था के महत्वपूर्ण अंग थे। यद्यपि यह काल राजनीतिक दृष्टि से अस्थिरता का काल माना जाता है, तथापि आर्थिक जीवन पूर्णतः अवरुद्ध नहीं हुआ। इसके विपरीत कृषि, व्यापार, सिंचाई, भूमिदान तथा भू-राजस्व व्यवस्था में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए, जिन्होंने भारतीय अर्थव्यवस्था को नवीन आधार प्रदान किया। मौर्योत्तर काल की केंद्रीय प्रशासनिक व्यवस्था मौर्यकालीन कठोर केन्द्रीकरण की अपेक्षा अधिक क्षेत्रीय एवं विकेन्द्रित स्वरूप की थी। स्थानीय प्रशासन, ग्राम व्यवस्था तथा भू-राजस्व प्रणाली में क्षेत्रीय शासकों की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण हो गई थी। इस काल के शासकों ने अपने-अपने क्षेत्रों में प्रशासनिक स्थिरता स्थापित करने तथा आर्थिक संसाधनों को सुदृढ़ करने के लिए कृषि, सिंचाई एवं व्यापारिक गतिविधियों को प्रोत्साहन प्रदान किया। यही कारण है कि राजनीतिक अस्थिरता के बावजूद आर्थिक संरचना निरन्तर सक्रिय बनी रही।

मौर्योत्तर काल की राजनीतिक पृष्ठभूमि एवं केंद्रीय प्रशासन

शुंग वंश

मौर्य साम्राज्य के पतन के पश्चात् 185 ईसा पूर्व पुष्यमित्र शुंग ने शुंग वंश की स्थापना की। शुंगों का शासन मुख्यतः उत्तर भारत में स्थापित हुआ तथा पाटलिपुत्र इसकी राजधानी थी। शुंग शासकों ने मौर्यकालीन प्रशासनिक परम्पराओं को पूर्णतः समाप्त नहीं किया, बल्कि उनमें आवश्यक परिवर्तन करके शासन व्यवस्था को संचालित किया।[i]

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

इस काल में राजनीतिक संघर्षों एवं विदेशी आक्रमणों की स्थिति बनी रही, फिर भी शुंग शासकों ने आर्थिक व्यवस्था को स्थिर बनाए रखने का प्रयास किया। विदिशा को द्वितीय राजधानी बनाकर प्रशासनिक नियंत्रण को मजबूत किया गया। राज्य की आय का प्रमुख स्रोत कृषि एवं भू-राजस्व था, इसलिए ग्रामीण प्रशासन को विशेष महत्व प्राप्त हुआ। शुंग शासकों ने किसानों से नियमित कर वसूली तथा कृषि व्यवस्था को व्यवस्थित बनाए रखने का प्रयास किया।[ii] व्यापारिक गतिविधियाँ भी निरन्तर जारी रहीं तथा प्रमुख नगर आर्थिक केन्द्रों के रूप में विकसित होते रहे।

अमात्य

शुंग प्रशासन में 'अमात्य' राजा का प्रमुख प्रशासनिक एवं आर्थिक अधिकारी था। अमात्य राज्य की आर्थिक नीतियों का संचालन करता था तथा भू-राजस्व व्यवस्था की देखरेख करता था।[iii] किसानों से कर वसूली की व्यवस्था उसी के अधीन संचालित होती थी। कृषि भूमि का लेखा-जोखा रखना तथा कृषि उत्पादन पर निगरानी रखना भी उसका महत्वपूर्ण कार्य था। ग्रामिक एवं स्थानीय अधिकारी अमात्य के अधीन कार्य करते थे। सिंचाई व्यवस्था को बनाए रखने तथा कृषि उत्पादन में वृद्धि करने के लिए प्रशासनिक निर्देश दिए जाते थे।[iv] व्यापारिक गतिविधियों एवं बाजार व्यवस्था पर भी अमात्य की दृष्टि रहती थी। राजकोष की आय एवं व्यय का नियंत्रण भी उसी के अधीन था। युद्धों एवं राजनीतिक संघर्षों के समय आर्थिक व्यवस्था को स्थिर बनाए रखने की जिम्मेदारी भी अमात्य की थी। इस प्रकार शुंग काल में अमात्य राज्य की आर्थिक संरचना का प्रमुख संचालक था।

ग्रामिक / ग्रामणी

ग्रामिक ग्रामीण प्रशासन का प्रमुख अधिकारी था। इसका मुख्य कार्य किसानों से भू-राजस्व वसूलना तथा कृषि व्यवस्था को व्यवस्थित बनाए रखना था। ग्रामिक कृषि भूमि की देखरेख करता था तथा यह सुनिश्चित करता था कि खेती नियमित रूप से चलती रहे। सिंचाई व्यवस्था एवं ग्रामीण शान्ति बनाए रखने की जिम्मेदारी भी उसी की होती थी। ग्राम स्तर पर प्रशासनिक नियंत्रण बनाए रखने में ग्रामिक की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण थी। किसानों एवं राज्य के बीच संपर्क स्थापित करने का कार्य भी ग्रामिक करता था।[v]

कण्व वंश

शुंगों के पश्चात् लगभग 68 ईसा पूर्व कण्व वंश का उदय हुआ। वसुदेव कण्व इस वंश का संस्थापक था। कण्व शासकों का प्रभाव मुख्यतः मगध क्षेत्र तक सीमित था। यद्यपि इनका शासनकाल अल्पकालीन था, फिर भी इन्होंने प्रशासनिक एवं आर्थिक व्यवस्था को बनाए रखने का प्रयास किया। कण्व प्रशासन ब्राह्मणवादी परम्पराओं से प्रभावित था तथा कृषि एवं भू-राजस्व राज्य की आय के मुख्य स्रोत बने रहे। ग्रामीण प्रशासन को व्यवस्थित रखने पर विशेष ध्यान दिया गया। कण्व शासकों ने पूर्ववर्ती आर्थिक संरचना को बनाए रखा, जिससे कृषि उत्पादन एवं राजस्व व्यवस्था में निरन्तरता बनी रही।[vi]

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

अमात्य

कण्व प्रशासन में 'अमात्य' राज्य की आर्थिक नीतियों का प्रमुख संचालक था। भूमि कर का निर्धारण एवं कर संग्रहण उसकी देखरेख में होता था। किसानों से नियमित भू-राजस्व वसूलने की व्यवस्था बनाई गई। कृषि भूमि का लेखा-जोखा रखा जाता था तथा सिंचाई एवं कृषि कार्यों की देखरेख भी प्रशासन द्वारा की जाती थी।[vii] व्यापारिक गतिविधियों से प्राप्त करों का नियंत्रण भी अमात्य के अधीन था। स्थानीय अधिकारियों एवं ग्रामिकों पर अमात्य की निगरानी रहती थी। राजकोष को सुदृढ़ बनाए रखना तथा राज्य की आर्थिक स्थिरता को बनाए रखना उसका मुख्य उद्देश्य था। इस प्रकार कण्व प्रशासन में अमात्य आर्थिक व्यवस्था का महत्वपूर्ण स्तम्भ था।

ग्रामिक

ग्रामिक ग्राम स्तर पर प्रशासनिक एवं आर्थिक व्यवस्था का संचालन करता था। कृषि उत्पादन, कर संग्रहण तथा ग्रामीण शान्ति व्यवस्था बनाए रखना उसका प्रमुख कार्य था। किसानों एवं राज्य के मध्य संपर्क स्थापित करने में ग्रामिक की महत्वपूर्ण भूमिका थी।[viii]

इण्डो-ग्रीक वंश

मौर्योत्तर काल में उत्तर-पश्चिम भारत में इण्डो-ग्रीक शासकों का उदय हुआ। ये मूलतः बैक्ट्रिया के यूनानी शासक थे, जिन्होंने भारत के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रों में अपनी सत्ता स्थापित की। मिनाण्डर (मिलिन्द) इनका सबसे प्रसिद्ध शासक था। इनके राज्य का विस्तार तक्षशिला, गांधार, पंजाब तथा मथुरा तक था। इन्होंने भारतीय एवं यूनानी प्रशासनिक परम्पराओं का मिश्रित स्वरूप अपनाया। इण्डो-ग्रीक काल में व्यापारिक गतिविधियों एवं नगरीय जीवन का विशेष विकास हुआ। सिक्का प्रचलन में वृद्धि तथा व्यापारिक मार्गों की सुरक्षा पर विशेष ध्यान दिया गया। यूनानी प्रभाव के कारण मुद्रा प्रणाली अधिक विकसित हुई तथा उच्च गुणवत्ता के सिक्कों का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। व्यापारिक नगरों का विस्तार हुआ तथा विदेशी व्यापार को प्रोत्साहन मिला।[ix]

स्ट्रेटेजोस (Strategos) / प्रान्तीय अधिकारी

इण्डो-ग्रीक प्रशासन में यूनानी परम्परा के अनुसार प्रान्तीय अधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी, जिन्हें 'स्ट्रेटेजोस' कहा जाता था। ये अधिकारी प्रशासनिक एवं आर्थिक दोनों प्रकार के कार्यों का संचालन करते थे। व्यापारिक मार्गों की सुरक्षा तथा बाजार व्यवस्था को नियंत्रित करना इनका मुख्य कार्य था।[x] तक्षशिला एवं मथुरा जैसे नगरों को व्यापारिक केन्द्रों के रूप में विकसित किया गया। उच्च गुणवत्ता के सिक्कों का प्रचलन करवाया गया, जिससे व्यापार को अत्यधिक प्रोत्साहन मिला। व्यापारिक वस्तुओं पर कर वसूला जाता था तथा विदेशी व्यापार को प्रशासनिक संरक्षण प्रदान किया गया। मध्य एशिया एवं पश्चिमी देशों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध मजबूत हुए। व्यापारिक गतिविधियों में वृद्धि से राज्य की आय भी बढ़ी।

इस प्रकार इण्डो-ग्रीक प्रशासन ने उत्तर भारत की व्यापारिक एवं मुद्रा आधारित अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।[xi]

शक वंश

बैक्ट्रिया में इंडों-ग्रीकों का प्रभुत्व मध्य एशिया से आई घुमंतू जनजातियों के आक्रमण के कारण खत्म हो गया। इन जनजातियों में सर्वप्रथम 'शक' थे, जो उत्तर-पश्चिम भारत में स्थित सिंधु घाटी में प्रभुत्व विस्तृत करते हुए, भारत के पश्चिमी भाग में बस गए। इनकी दो शाखाएं भारत में फैली। प्रथम, उत्तरी क्षत्रप कहलाए, जो मथुरा और तक्षशिला के आस-पास तथा द्वितीय, पश्चिमी क्षत्रप कहलाए, जो नासिक एवं उज्जैयनी के आस-पास बसे थे। 'शको' में पश्चिमी क्षत्रप अधिक प्रसिद्ध हुए, जिनके प्रसिद्ध शासक 'नहपान' और 'रूद्रदामन' थे।[xii] इस काल के विषय अधिक जानकारी के महत्वपूर्ण स्रोत सिक्के और अभिलेख हैं। अभिलेखों के आधार पर 'क्षहरात वंश' के शासक नहपान का शासन कठियावाड, द0 गुजरात, प0 मालवा, उ0 कांकेण, पूना आदि तक विस्तृत था। 'भड़ौच' अथवा 'भरूच' इनका प्रमुख बन्दरगाह था। उज्जैन और प्रतिष्ठान व्यापारिक नगर थे। इसी प्रकार रूद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख से प्रतीत होता है कि इसका क्षेत्र विस्तार पूर्व और पश्चिम मालवा, द्वारिका के आस-पास का प्रदेश, सौराष्ट्र, कच्छ, सिंधु का मुहाना, उत्तरी कोंकण, मारवाड़ आदि तक था।[xiii] इस से समुद्री व्यापार एवं विदेशी व्यापार को विशेष प्रोत्साहन मिला। सिंचाई व्यवस्था एवं सार्वजनिक निर्माण कार्यों पर भी प्रशासन ने विशेष ध्यान दिया। व्यापारिक मार्गों की सुरक्षा तथा बन्दरगाहों के विकास ने आर्थिक समृद्धि को बढ़ावा दिया। इस काल में व्यापारिक कर राज्य की आय का महत्वपूर्ण स्रोत बन गए थे।

महाक्षत्रप

महाक्षत्रप शक प्रशासन का सर्वोच्च प्रान्तीय अधिकारी होता था। वह भू-राजस्व व्यवस्था, व्यापारिक करों तथा प्रशासनिक कार्यों का संचालन करता था। व्यापारिक मार्गों एवं बन्दरगाहों की सुरक्षा प्रशासन की प्रमुख जिम्मेदारी थी। रूद्रदामन ने सुदर्शन झील के बाँध की मरम्मत करवाकर सिंचाई व्यवस्था को मजबूत किया, जिससे कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई[xiv]। व्यापारिक नगरों के विकास से राज्य की आय बढ़ी। विदेशी व्यापार से प्राप्त राजस्व ने शक अर्थव्यवस्था को समृद्ध बनाया। प्रशासन द्वारा व्यापारिक गतिविधियों को संरक्षण दिया गया, जिससे समुद्री व्यापार में वृद्धि हुई। महाक्षत्रप स्थानीय अधिकारियों पर नियंत्रण रखता था तथा राजस्व व्यवस्था को व्यवस्थित बनाए रखता था।[xv]

शुल्काध्यक्ष

शुल्काध्यक्ष व्यापारिक करों की वसूली करने वाला अधिकारी था। यह बाजारों, व्यापारिक मार्गों एवं बन्दरगाहों से कर वसूलता था। विदेशी व्यापार से प्राप्त राजस्व को व्यवस्थित करना तथा व्यापारिक गतिविधियों को नियंत्रित करना इसका मुख्य कार्य था।[xvi]

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

कुषाण वंश

मौर्योत्तर कालीन विदेशी आक्रमणों की दूसरी प्रमुख श्रृंखला यू-ची जनजातियों के रूप में सामने आई, जिसका नेतृत्व 'कुजुल कैडफीसेज' ने किया था। प्रारम्भ में इनका अधिकार काबुल तथा कश्मीर क्षेत्र तक सीमित था, किन्तु बाद में इनकी शक्ति में निरन्तर वृद्धि हुई। कुजुल कैडफीसेज के पश्चात् उसका पुत्र विमा कैडफीसेज गद्दी पर बैठा तथा उसके बाद कनिष्क के शासनकाल में कुषाण साम्राज्य अपनी चरम सीमा पर पहुँचा। कुषाणों के राज्य विस्तार की जानकारी उनके शिलालेखों, सिक्कों तथा साहित्यिक स्रोतों से प्राप्त होती है।[xvii] कुषाण साम्राज्य की प्रथम राजधानी 'पुरुषपुर' (वर्तमान पेशावर) थी, जबकि इसकी द्वितीय राजधानी 'मथुरा' थी। पूर्व में उनका राज्य वाराणसी तक तथा दक्षिण में सांची तक विस्तृत था। इस काल में मध्य एशिया एवं चीन के साथ भारत के घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हुए। कनिष्क ने काशगर, यारकंद तथा खोतान जैसे मध्य एशियाई प्रदेशों पर भी अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था।[xviii] इस प्रकार मौर्यों के पश्चात् पहली बार उत्तर भारत में एक विशाल एवं संगठित साम्राज्य की स्थापना हुई। कनिष्क का दरबार विद्वानों एवं धर्माचार्यों से सुशोभित था। उसके दरबार में अश्वघोष, वसुमित्र, नागार्जुन तथा चरक जैसे विद्वान विद्यमान थे। यद्यपि कनिष्क स्वयं बौद्ध धर्म का अनुयायी था, तथापि उसने अन्य धर्मों के प्रति भी सहिष्णुता की नीति अपनाई, जिसकी पुष्टि उसके सिक्कों से होती है। कुषाणों की अपनी कोई विशिष्ट सांस्कृतिक परम्परा नहीं थी, परन्तु भारत में बसने के उपरान्त उन्होंने भारतीय एवं यूनानी संस्कृतियों को अपनाकर एक मिश्रित सांस्कृतिक परम्परा को जन्म दिया। यही मिश्रित संस्कृति आगे चलकर 'गन्धार कला शैली' के रूप में विकसित हुई। कुषाण शासन के फलस्वरूप उत्तर भारत को यूनानी एवं शक आक्रमणों से मुक्ति मिली तथा देश में शान्ति एवं सुव्यवस्था स्थापित हुई। इस राजनीतिक स्थिरता का प्रभाव आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन पर भी पड़ा।

कला, साहित्य, धर्म, विज्ञान तथा व्यापार के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई।[xix] निःसन्देह गुप्तकाल से पूर्व कुषाण शासन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है। उत्तर भारत में स्थापित मौर्योत्तरकालीन सभी राजवंशों ने कृषि आधारित अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने का प्रयास किया। इस काल में ग्रामीण व्यवस्था, कृषि श्रमिक एवं दास व्यवस्था, भू-व्यवस्था, किसानों की स्थिति, भूमिदान, भू-राजस्व, सिंचाई व्यवस्था, कृषि उपकरण, धान्यकोष, पशुपालन तथा कृषि समस्याओं के समाधान से सम्बन्धित व्यवस्थाओं का विकास किया गया।[xx] यद्यपि मौर्योत्तर काल को राजनीतिक दृष्टि से अव्यवस्था का काल माना जाता है, तथापि आर्थिक गतिविधियाँ निरन्तर संचालित होती रहीं। कृषि, व्यापार एवं राजस्व व्यवस्था के इस विकास ने आगे चलकर गुप्त शासकों को एक सुदृढ़ आर्थिक आधार प्रदान किया, जिसे उन्होंने चरम सीमा तक विकसित किया।

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

क्षत्रप महाक्षत्रप /

कुषाण प्रशासन में प्रान्तीय शासन के संचालन के लिए 'क्षत्रप' एवं 'महाक्षत्रप' जैसे अधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी। ये अधिकारी स्थानीय स्तर पर प्रशासन, कर व्यवस्था तथा आर्थिक गतिविधियों को नियंत्रित करते थे। भू-राजस्व की वसूली, व्यापारिक करों का संग्रहण तथा व्यापारिक मार्गों की सुरक्षा इनकी प्रमुख जिम्मेदारियाँ थीं। कुषाण साम्राज्य का विस्तार मध्य एशिया से उत्तर भारत तक था, इसलिए व्यापारिक मार्गों की सुरक्षा प्रशासन के लिए अत्यन्त आवश्यक थी। क्षत्रप एवं महाक्षत्रप यह सुनिश्चित करते थे कि रेशम मार्ग से होने वाला व्यापार सुचारु रूप से चलता रहे। व्यापारिक गतिविधियों से प्राप्त कर राज्य की आय का प्रमुख स्रोत बन गए थे। किसानों एवं व्यापारियों को प्रशासनिक संरक्षण प्रदान किया गया, जिससे आर्थिक गतिविधियों में निरन्तर वृद्धि हुई। सिंचाई एवं कृषि विस्तार को भी प्रशासन द्वारा प्रोत्साहित किया गया। इस प्रकार क्षत्रप एवं महाक्षत्रप कुषाण आर्थिक व्यवस्था के प्रमुख संचालक थे तथा उन्होंने उत्तर भारत की आर्थिक समृद्धि को सुदृढ़ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।[xxi]

शुल्काधिकारी

कुषाण प्रशासन में 'शुल्काधिकारी' व्यापारिक करों की वसूली करने वाला महत्वपूर्ण अधिकारी था। यह विदेशी एवं आन्तरिक व्यापार पर लगने वाले करों का नियंत्रण करता था। रेशम मार्ग से होने वाले व्यापार को व्यवस्थित रखना तथा व्यापारिक वस्तुओं पर शुल्क लगाना इसका मुख्य कार्य था। व्यापारिक मार्गों एवं बाजारों की निगरानी भी शुल्काधिकारी द्वारा की जाती थी। रोमन साम्राज्य एवं मध्य एशिया के साथ बढ़ते व्यापार से राज्य को अत्यधिक राजस्व प्राप्त होता था। स्वर्ण मुद्राओं के व्यापक प्रचलन एवं व्यापारिक समृद्धि में इन अधिकारियों की महत्वपूर्ण भूमिका थी। इस प्रकार शुल्काधिकारी कुषाण कालीन व्यापारिक एवं राजस्व व्यवस्था का प्रमुख अंग था।[xxii]

कृषि आधारित अर्थव्यवस्था

मौर्योत्तर काल की अर्थव्यवस्था का मूल आधार कृषि थी। यद्यपि राजनीतिक दृष्टि से यह युग अनेक क्षेत्रीय राज्यों में विभक्त था, तथापि कृषि उत्पादन एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था में निरन्तरता बनी रही। इस काल में कृषि से सम्बन्धित व्यवस्थाओं—जैसे ग्रामीण प्रशासन, भूमिस्वामित्व, भू-राजस्व, सिंचाई, कृषि उपकरण तथा धान्य संग्रहण—का पर्याप्त विकास हुआ। पतंजलि के 'महाभाष्य', मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति तथा नारद स्मृति आदि ग्रन्थों से तत्कालीन कृषि व्यवस्था की विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है।

कृषि केवल आर्थिक गतिविधि ही नहीं थी, बल्कि सामाजिक संरचना का भी प्रमुख आधार थी। किसान वर्ग समाज की उत्पादन प्रणाली का केंद्र था और राज्य की आय का मुख्य स्रोत भी कृषि ही थी। इस काल में ग्रामीण प्रशासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम था। ग्राम का मुखिया ग्रामणी, ग्रामिक अथवा ग्रामधिपति कहलाता था। ग्राम प्रशासन पर्याप्त सीमा तक स्वायत्त था

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

तथा ग्राम प्रमुख स्थानीय न्याय, सुरक्षा एवं राजस्व संग्रहण का दायित्व निभाता था। ग्रामवासियों की सुरक्षा तथा कृषि भूमि की रक्षा भी उसकी जिम्मेदारी थी।

कृषक वर्ग का स्वरूप

मौर्योत्तर काल में कृषि भूमि तथा भू-राजस्व के असमान वितरण के परिणामस्वरूप कृषक समाज विभिन्न आर्थिक एवं सामाजिक वर्गों में विभाजित हो गया था। इस काल में धनी, साधारण तथा निर्धन किसानों के रूप में कृषकों के तीन प्रमुख स्तर विकसित हुए। धनी किसान प्रायः बड़े भू-स्वामी होते थे, जिनमें ग्रामणी, राजस्व अधिकारी तथा भूमिदान प्राप्त व्यक्ति सम्मिलित थे।[xxiii] ये विशाल भूमि पर श्रमिकों, बँटाईदारों एवं दासों के माध्यम से कृषि करवाते थे। 'महावस्तु' में ऐसे ग्रामणी का उल्लेख मिलता है जो अपने खेतों की देखरेख के लिए तीव्र गति से खेतों की ओर जाता है।[xxiv] इस प्रकार के भू-स्वामी वर्ग का उदय इस बात का सूचक था कि भूमि का स्वामित्व धीरे-धीरे कुछ प्रभावशाली वर्गों के हाथों में केन्द्रित होने लगा था। साधारण किसान अपनी छोटी जोतों पर स्वयं एवं परिवार के सहयोग से कृषि करते थे तथा राज्य को कर प्रदान करते थे। ये किसान कृषि उपकरणों एवं सीमित श्रमिक सहायता के माध्यम से अपनी आजीविका चलाते थे। दूसरी ओर निर्धन किसानों के पास अत्यल्प भूमि होती थी तथा वे कृषि उपकरण उधार लेकर खेती करते थे। कुछ किसानों के पास हल तक नहीं होते थे और वे दूसरों के खेतों में मजदूरी या बँटाई पर कार्य करते थे। 'मनु' ने बँटाई पर कार्य करने वाले कृषकों को 'अर्द्धीक' कहा है।[xxv] इसके अतिरिक्त युद्धबंदियों एवं दासों को भी कृषि कार्यों में लगाया जाता था। भूमि पर श्रमिकों के नियोजन तथा बँटाई प्रथा के प्रसार से कृषक समाज में आर्थिक असमानता बढ़ी। इस काल में भूमि के संकेन्द्रण की प्रवृत्ति स्पष्ट दिखाई देती है, जिसने कृषकों की स्थिति को अपेक्षाकृत कमजोर बनाया। व्यवस्थाकारों ने भूमि, भू-स्वामित्व, भू-राजस्व तथा कृषि श्रमिकों से सम्बन्धित अनेक नियम बनाए, जो तत्कालीन कृषि व्यवस्था को नियंत्रित करने में सहायक थे। 'मनु', 'याज्ञवल्क्य' तथा 'नारद' द्वारा निर्मित दण्ड विधान इस बात की पुष्टि करते हैं कि राज्य कृषि व्यवस्था को व्यवस्थित बनाए रखने के प्रति सजग था।[xxvi] यद्यपि राजनीतिक दृष्टि से यह काल विखण्डन एवं अस्थिरता का काल माना जाता है, तथापि कृषि व्यवस्था निरन्तर विकसित होती रही तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था ने राज्य की आर्थिक संरचना को स्थिर बनाए रखा।

भू-व्यवस्था एवं भूमिदान

मौर्योत्तर काल में भूमिदान प्रथा का व्यापक विकास हुआ, जिसने तत्कालीन कृषि व्यवस्था, ग्रामीण अर्थव्यवस्था तथा सामाजिक संरचना को गहराई से प्रभावित किया। इस काल में शासकों द्वारा ब्राह्मणों, बौद्ध भिक्षुओं, धार्मिक संस्थाओं तथा प्रशासनिक अधिकारियों को भूमि दान देने की परम्परा अत्यधिक प्रचलित हो गई थी। सातवाहन अभिलेखों में अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर ब्राह्मणों को ग्राम दान देने का उल्लेख प्राप्त होता है। ये 'अग्रहार' ग्राम प्रायः करमुक्त होते थे तथा इन पर राज्य का प्रत्यक्ष हस्तक्षेप सीमित हो जाता था।

शक एवं सातवाहन शासकों द्वारा सम्पूर्ण ग्रामों तथा विशाल भू-खण्डों के दान के उदाहरण भी प्राप्त होते हैं।[xxvii] गौतमीपुत्र शातकर्णी तथा अन्य शासकों द्वारा दिए गए दान ग्रामों में प्रशासनिक अधिकारों का भी हस्तांतरण किया जाता था। इन क्षेत्रों में सेना, राजकीय अधिकारियों तथा कर संग्राहकों के प्रवेश पर भी प्रतिबन्ध लगाया जाता था। भूमिदान का उद्देश्य केवल धार्मिक पुण्य प्राप्त करना ही नहीं था, बल्कि परती भूमि को कृषि योग्य बनाना तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था का विस्तार करना भी था।[xxviii] ब्राह्मणों एवं धार्मिक संस्थाओं को दी गई भूमि पर नई बस्तियों का विकास हुआ तथा वन क्षेत्रों को कृषि योग्य बनाया गया। इन दान भूमियों पर ग्रहीता स्वयं कृषि करवाता था अथवा श्रमिकों एवं बँटाईदारों के माध्यम से खेती कराता था। इससे कृषकों एवं भू-स्वामियों के बीच नवीन आर्थिक सम्बन्ध विकसित हुए। भूमिदान प्रथा के परिणामस्वरूप नए भू-स्वामी वर्ग का उदय हुआ, जिसने ग्रामीण समाज में सामाजिक एवं आर्थिक असमानता को बढ़ाया।[xxix] मनुस्मृति में एक, दस, बीस, सौ तथा हजार ग्रामों के अधिकारियों को भूमि प्रदान किए जाने का उल्लेख मिलता है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि प्रशासनिक सेवाओं के बदले भूमि दान की परम्परा विकसित हो रही थी।[xxx] इस व्यवस्था ने आगे चलकर सामन्तवादी प्रवृत्तियों की पृष्ठभूमि तैयार की। भूमिदान के कारण राज्य की प्रत्यक्ष आय में कमी आने लगी, क्योंकि अनेक दान ग्राम करमुक्त घोषित कर दिए जाते थे। इसके बावजूद शासक वर्ग ने धार्मिक प्रतिष्ठा एवं प्रशासनिक सुविधा के कारण इस व्यवस्था को प्रोत्साहित किया। भूमिदान के माध्यम से शासकों ने दूरस्थ क्षेत्रों पर अपना प्रभाव स्थापित किया तथा ब्राह्मणों एवं धार्मिक संस्थाओं का समर्थन प्राप्त किया। इस प्रकार भूमिदान प्रथा ने मौर्योत्तर कालीन कृषि व्यवस्था, ग्रामीण समाज तथा आर्थिक संरचना को गहराई से प्रभावित किया और भारतीय सामन्तवाद के प्रारम्भिक स्वरूप को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।[xxxi]

भू-राजस्व एवं कर व्यवस्था

मौर्योत्तर काल में भू-राजस्व राज्य की आय का प्रमुख स्रोत था तथा सम्पूर्ण आर्थिक व्यवस्था का आधार कृषि पर निर्भर था। यद्यपि इस काल में मौर्यकाल जैसी सुदृढ़ केन्द्रीकृत प्रशासनिक व्यवस्था विद्यमान नहीं थी, तथापि विभिन्न राजवंशों ने कर-संग्रहण की परम्परा को बनाए रखा। धर्मशास्त्रकारों एवं व्यवस्थाकारों ने भू-राजस्व से सम्बन्धित अनेक सिद्धान्त प्रस्तुत किए। मनु के अनुसार राजा को प्रजा से उसी प्रकार अल्प मात्रा में कर ग्रहण करना चाहिए, जैसे मधुमक्खी पुष्पों से मधु ग्रहण करती है। इससे स्पष्ट होता है कि कर नीति में संतुलन बनाए रखने का प्रयास किया गया था। इस काल में 'भाग' प्रमुख भू-राजस्व था, जो कृषि उपज पर लगाया जाता था। मनुस्मृति में भूमि की गुणवत्ता एवं उत्पादन क्षमता के आधार पर उपज का 1/6, 1/8 अथवा 1/12 भाग कर के रूप में लेने का उल्लेख मिलता है।[xxxii] भू-राजस्व के अतिरिक्त 'बलि', 'हिरण्य', 'प्रणय', 'कर' तथा 'विष्टि' जैसे अन्य कर भी प्रचलित थे। 'बलि' धार्मिक अथवा पारम्परिक कर था, जबकि 'हिरण्य' नकद रूप में लिया जाने वाला कर माना जाता था।

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

'विष्टि' के अन्तर्गत प्रजा से बेगार अथवा श्रम सेवा ली जाती थी।[xxxiii] व्यापारिक गतिविधियों एवं मार्गों पर लगने वाले शुल्क भी राज्य की आय के महत्वपूर्ण स्रोत थे। कर-संग्रहण के लिए 'शुल्काध्यक्ष', 'शौल्किक', 'अन्तपाल' तथा अन्य राजस्व अधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी। ये अधिकारी भू-राजस्व की वसूली, व्यापारिक करों के नियन्त्रण तथा राजकोष की सुरक्षा का कार्य करते थे। कर न देने वालों को दण्डित करने की व्यवस्था भी विद्यमान थी। मौर्योत्तर काल में भूमि मापन एवं उत्पादन के आधार पर कर निर्धारित किया जाता था। उपजाऊ भूमि से अधिक कर लिया जाता था, जबकि कम उपजाऊ भूमि पर अपेक्षाकृत कम कर लगाया जाता था।[xxxiv] इस काल में सिंचाई व्यवस्था तथा कृषि विस्तार को बढ़ावा देने के लिए भी राज्य प्रयासरत था, क्योंकि कृषि उत्पादन में वृद्धि से ही राजस्व में वृद्धि सम्भव थी। अनेक शासकों द्वारा नहरों, तालाबों एवं बाँधों का निर्माण करवाया गया। रूद्रदामन[xxxv] के जूनागढ़ अभिलेख से ज्ञात होता है कि उसने सुदर्शन झील के बाँध की मरम्मत करवाई थी। इससे स्पष्ट होता है कि राज्य कृषि एवं सिंचाई व्यवस्था को राजस्व वृद्धि के प्रमुख साधन के रूप में देखता था। भूमिदान प्रथा के विस्तार के कारण अनेक ग्राम करमुक्त घोषित कर दिए गए थे, जिससे राज्य की प्रत्यक्ष आय में कमी भी आने लगी। इसके बावजूद भू-राजस्व व्यवस्था ग्रामीण अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार बनी रही। कृषकों द्वारा दिए गए करों से सेना, प्रशासन, सार्वजनिक निर्माण तथा धार्मिक कार्यों का संचालन किया जाता था। इस प्रकार मौर्योत्तर काल की भू-राजस्व व्यवस्था न केवल राज्य की आर्थिक शक्ति का आधार थी, बल्कि उसने कृषि, ग्रामीण समाज तथा प्रशासनिक संरचना को भी गहराई से प्रभावित किया।[xxxvi]

सिंचाई, उत्पादन एवं कृषि उपकरण

मौर्योत्तर काल में कृषि अर्थव्यवस्था की उन्नति का प्रमुख आधार सिंचाई व्यवस्था, कृषि उत्पादन तथा उन्नत कृषि उपकरण थे। इस काल में शासकों एवं ग्रामीण समाज दोनों ने सिंचाई साधनों के विकास पर विशेष ध्यान दिया, क्योंकि कृषि उत्पादन मुख्यतः जल की उपलब्धता पर निर्भर था। वर्षा कृषि का प्रमुख आधार थी, तथापि केवल वर्षा पर निर्भर रहना सुरक्षित नहीं माना जाता था। इसलिए कृत्रिम सिंचाई साधनों का भी व्यापक विकास हुआ। नदियाँ, झीलें, तालाब, कुएँ, नहरें एवं बाँध सिंचाई के प्रमुख साधन थे। अनेक क्षेत्रों में किसानों द्वारा निजी कुओं का निर्माण कराया जाता था, जबकि बड़े जलाशयों एवं बाँधों का निर्माण राज्य द्वारा करवाया जाता था। मौर्योत्तर काल में सिंचाई व्यवस्था के संरक्षण हेतु राज्य ने विशेष प्रयास किए। शक शासक रूद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख से ज्ञात होता है कि उसने सुदर्शन झील के बाँध की मरम्मत करवाकर सिंचाई व्यवस्था को सुदृढ़ किया।[xxxvii] इससे कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई तथा आसपास के क्षेत्रों की भूमि अधिक उपजाऊ बन सकी। सातवाहन, शक तथा अन्य समकालीन शासकों द्वारा भी तालाबों, नहरों एवं जलाशयों के निर्माण के उल्लेख प्राप्त होते हैं। 'मनुस्मृति' एवं 'याज्ञवल्क्य स्मृति'[xxxviii] में जलाशयों एवं बाँधों को क्षति पहुँचाने वालों के लिए कठोर दण्ड व्यवस्था का वर्णन मिलता है।

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

इससे स्पष्ट होता है कि जल प्रबन्धन को कृषि उत्पादन का अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग माना जाता था। इस काल में कृषि उत्पादन में भी पर्याप्त वृद्धि दिखाई देती है। 'महाभाष्य'[xxxix] में 'कृष्टपच्य' तथा 'अकृष्टपच्य' उपजों का उल्लेख मिलता है, जिससे ज्ञात होता है कि सिंचित एवं असिंचित दोनों प्रकार की कृषि प्रचलित थी। धान, जौ, गेंहूँ, तिल, सरसों, मूंग, उड़द, गन्ना, कपास एवं विभिन्न मसालों की खेती की जाती थी।[xl] यूनानी लेखकों ने भारतीय भूमि की उर्वरता तथा कृषि उत्पादन की प्रशंसा की है। भारत की उपजाऊ भूमि एवं अनुकूल जलवायु के कारण कृषि उत्पादन पर्याप्त मात्रा में होता था। अतिरिक्त कृषि उत्पादन के कारण व्यापार एवं उद्योगों को भी प्रोत्साहन मिला तथा नगरों का विकास सम्भव हो सका।

मौर्योत्तर काल में कृषि उपकरणों के विकास पर भी विशेष ध्यान दिया गया। हल, हलफाल, खनित्र, फावड़ा, हंसिया, मूसल तथा कुदाल जैसे उपकरण कृषि कार्यों में प्रयुक्त होते थे। लोहे के उपकरणों के उपयोग से भूमि की गहरी जुताई सम्भव हुई, जिससे उत्पादन क्षमता में वृद्धि हुई। बड़े हलों में आठ से बारह बैलों तक को जोता जाता था।[xli] बैलों का उपयोग जुताई, परिवहन एवं सिंचाई कार्यों में भी किया जाता था। कृषि उत्पादन को सुरक्षित रखने हेतु धान्यकोठारों एवं अन्नागारों का निर्माण किया जाता था, ताकि अकाल अथवा दुर्भिक्ष की स्थिति में खाद्यान्न उपलब्ध कराया जा सके। ग्रामीण समाज में लोहार एवं बढ़ई जैसे कारीगर कृषि उपकरणों के निर्माण एवं मरम्मत का कार्य करते थे। इससे कृषि एवं ग्रामीण उद्योगों के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हुआ। मौर्योत्तर काल में सिंचाई साधनों, कृषि उत्पादन एवं उन्नत उपकरणों के विकास ने भारतीय कृषि व्यवस्था को सुदृढ़ बनाया। कृषि उत्पादन में वृद्धि के कारण राज्य की राजस्व आय बढ़ी तथा व्यापारिक गतिविधियों को भी गति मिली। इस प्रकार कृषि एवं सिंचाई व्यवस्था ने मौर्योत्तर कालीन अर्थव्यवस्था को स्थिर एवं समृद्ध बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

पशुपालन, व्यापार एवं आर्थिक विकास

मौर्योत्तर कालीन अर्थव्यवस्था में पशुपालन, व्यापार तथा वाणिज्य का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान था। कृषि के साथ-साथ पशुपालन भी ग्रामीण अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार माना जाता था। गाय, बैल, भैंस, अश्व, ऊँट, हाथी तथा भेड़-बकरियाँ आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी मानी जाती थीं। बैलों का उपयोग हल चलाने, सिंचाई तथा परिवहन कार्यों में किया जाता था, जबकि अश्व एवं हाथी सैन्य शक्ति तथा राजकीय प्रतिष्ठा के प्रतीक थे। भेड़ एवं बकरियों से ऊन, दूध तथा मांस प्राप्त होता था। ग्रामीण समाज में पशुधन को सम्पन्नता का प्रतीक माना जाता था तथा अनेक स्थानों पर विनिमय के माध्यम के रूप में भी पशुओं का प्रयोग किया जाता था।[xlii] गोबर का उपयोग खाद के रूप में कृषि उत्पादन बढ़ाने में सहायक था। इस प्रकार पशुपालन कृषि व्यवस्था का पूरक अंग बन चुका था। मौर्योत्तर काल में व्यापार एवं वाणिज्य का भी व्यापक विकास हुआ। राजनीतिक विखण्डन के बावजूद व्यापारिक गतिविधियाँ निरन्तर संचालित होती रहीं।

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

इस काल में आन्तरिक एवं बाह्य दोनों प्रकार के व्यापार का विस्तार हुआ। उत्तर भारत के प्रमुख नगर—मथुरा, तक्षशिला, उज्जैन, कौशाम्बी एवं वाराणसी—महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्रों के रूप में विकसित हुए।[xliii] स्थल मार्गों के अतिरिक्त समुद्री व्यापार का भी विकास हुआ। भारत के रोमन साम्राज्य, मध्य एशिया, चीन तथा दक्षिण-पूर्व एशिया के साथ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित थे।[xliv] कुषाणों के समय रेशम मार्ग (Silk Route) के माध्यम से भारत का मध्य एशिया एवं चीन के साथ व्यापार अत्यधिक बढ़ा। भारतीय व्यापारी मसाले, वस्त्र, रत्न, हाथीदाँत तथा धातु उत्पादों का निर्यात करते थे, जबकि सोना, चाँदी एवं विलासिता की वस्तुएँ आयात की जाती थीं।[xlv]

व्यापारिक गतिविधियों के विकास में सिक्का व्यवस्था ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। मौर्योत्तर काल में शक, कुषाण एवं इण्डो-ग्रीक शासकों द्वारा स्वर्ण, रजत एवं ताम्र मुद्राओं का व्यापक प्रचलन किया गया। कुषाण शासकों, विशेषतः विमा कैडफीसेज एवं कनिष्क द्वारा स्वर्ण मुद्राओं का प्रचलन व्यापारिक समृद्धि का महत्वपूर्ण संकेत माना जाता है।[xlvi] मुद्रा प्रणाली के विकास से वस्तु विनिमय प्रणाली की सीमाएँ कम हुईं तथा व्यापार अधिक संगठित रूप में संचालित होने लगा। व्यापार एवं उद्योगों के विकास के साथ श्रेणी (Guild) व्यवस्था का भी विकास हुआ। शिल्पकारों एवं व्यापारियों की श्रेणियाँ आर्थिक गतिविधियों को नियंत्रित करती थीं। ये श्रेणियाँ उत्पादन, मूल्य निर्धारण तथा व्यापारिक नियमों का संचालन करती थीं। श्रेणियों के पास सामूहिक धन भी होता था, जिसे वे ऋण के रूप में प्रदान करती थीं। इससे व्यापारिक पूँजी का विकास हुआ। वस्त्र निर्माण, धातु उद्योग, मृद्भाण्ड निर्माण तथा आभूषण उद्योग इस काल के प्रमुख उद्योग थे।[xlvii]

मौर्योत्तर काल में पशुपालन, व्यापार एवं उद्योगों की उन्नति ने आर्थिक विकास को नई दिशा प्रदान की। कृषि अधिशेष के कारण व्यापारिक गतिविधियों को गति मिली तथा व्यापार से प्राप्त राजस्व राज्य की आय का महत्वपूर्ण स्रोत बन गया। नगरों का विकास, मुद्रा प्रणाली का विस्तार तथा व्यापारिक मार्गों की सुरक्षा ने आर्थिक संरचना को सुदृढ़ बनाया। इस प्रकार मौर्योत्तर काल राजनीतिक दृष्टि से यद्यपि विखण्डन का काल था, तथापि आर्थिक दृष्टि से यह प्रगति एवं संक्रमण का महत्वपूर्ण युग सिद्ध हुआ।

मौर्योत्तर काल भारतीय इतिहास का केवल राजनीतिक विघटन का युग नहीं था, बल्कि यह आर्थिक पुनर्गठन एवं प्रशासनिक परिवर्तन का भी महत्वपूर्ण काल था। यद्यपि मौर्यकालीन केन्द्रीय सत्ता का विघटन हो चुका था, तथापि क्षेत्रीय शासकों ने कृषि, सिंचाई, व्यापार एवं ग्रामीण प्रशासन को सुदृढ़ करने के लिए महत्वपूर्ण प्रयास किए। भूमि व्यवस्था, भूमिदान, भू-राजस्व तथा सिंचाई संबंधी व्यवस्थाओं ने भारतीय अर्थव्यवस्था को स्थायित्व प्रदान किया। इस काल में कृषि उत्पादन में वृद्धि, व्यापारिक मार्गों का विस्तार, सिंचाई साधनों का विकास तथा स्थानीय प्रशासन की सक्रियता ने भारतीय समाज को आर्थिक रूप से सुदृढ़ बनाया। साथ ही भूमिदान एवं भू-स्वामित्व की प्रवृत्तियों ने आगामी सामन्तवादी व्यवस्था की आधारभूमि तैयार की।

इस प्रकार मौर्योत्तर काल भारतीय आर्थिक एवं प्रशासनिक इतिहास के संक्रमणकाल के रूप में अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध होता है।

संदर्भ ग्रंथ एवं टिप्पणियाँ

---

[i] रतिभानु सिंह नाहर, प्राचीन भारत का राजनीतिक एंव संस्कृतिक इतिहास, किताब महल, *2017*, पृ*0 292.*

[ii] आरशर्मा .एस ., *प्राचीन भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, *2003*, पृ .*189*।

[iii] उपेन्द्र सिंह, *प्राचीन एवं प्रारम्भिक मध्यकालीन भारत का इतिहास,* पियर्सन प्रकाशन, नई दिल्ली, *2009*, पृ .*364*।

[iv] डी .डी .कौसाम्बी, *प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, *2008*, पृ .*198*।

[v] सत्यकेतु विद्यालंकार, *प्राचीन भारत का धार्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक जीवन,* श्री सरस्वती सदन, नई दिल्ली, *2001*, पृ .*173*।

[vi] राजबली पाण्डेय, *प्राचीन भारत,* विश्व विद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, *2015*, पृ .*198*।

[vii] डी .डी .कौसाम्बी, *प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता,* पूर्वोद्धृत पृ .*218*।

[viii] भगवतशरण उपाध्याय, *प्राचीन भारत का इतिहास,* बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, *1998*, पृ .*214*।

[ix] राजबली पाण्डेय, *प्राचीन भारत,* पूर्वोद्धृत, पृ .*224-26*।

[x] आरमजूमदार .सी ., *प्राचीन भारत,* मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, *2004*, पृ .*271-72*।

[xi] रोमिला थापर, *भारत का इतिहास,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, *2007*, पृ .*174-75*।

[xii] विमलचन्द्र पाण्डेय, प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, पृ*0 568-69.*

[xiii] वी. एस. भर्गव, प्राचीन भारतीय इतिहास, पृ*0 186-88.*

[xiv] रतिभानु सिंह नाहर, *प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास,* पूर्वोद्धृत पृ .*268*।

[xv] डी .डी .कौसाम्बी, *प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता,* पूर्वोद्धृत, पृ .*231*।

[xvi] भगवतशरण उपाध्याय, *प्राचीन भारत का इतिहास,* पूर्वोद्धृत, पृ .*227*।

[xvii] हेमचन्द्र रायचौधरी, *प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, *1996*, पृ .*341*।

[xviii] रोमिला थापर, *भारत का इतिहास,* पूर्वोद्धृत पृ .*212*।

[xix] आरशर्मा .एस ., *प्राचीन भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास,* पूर्वोद्धृत, पृ .*258*।

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

[xx] डीझा .एन ., *प्राचीन भारत एक रूपरेखा :*, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, *1998*, पृ .*181*।

[xxi] आरमजूमदार .सी ., *प्राचीन भारत,* मोतीलाल बनारसीदास, पूर्वोद्धृत, पृ .*311*।

[xxii] भगवतशरण उपाध्याय, *प्राचीन भारत का इतिहास,* पूर्वोद्धृत, पृ .*241*।

[xxiii] आरशर्मा .एस ., *प्राचीन भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास,* पूर्वोद्धृत, पृ .*261*।

[xxiv] विमलचन्द्र पाण्डेय, *प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास,* सेन्ट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, *1994*, पृ . *276*।

[xxv] उपेन्द्र सिंह, *प्राचीन एवं प्रारम्भिक मध्यकालीन भारत का इतिहास,* पूर्वोद्धृत, पृ .*441*।

[xxvi] हेमचन्द्र रायचौधरी, *प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास,* पूर्वोद्धृत, पृ .*359*।

[xxvii] आर .सी. मजूमदार, *प्राचीन भारत,* मोतीलाल बनारसीदास, पूर्वोद्धृत, पृ .*326*।

[xxviii] डीझा .एन ., *प्राचीन भारत एक रूपरेखा :*, पूर्वोद्धृत, पृ .*198*।

[xxix] डी .डी .कौसाम्बी, *प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता,* राजकमल प्रकाशन, पूर्वोद्धृत, पृ .*263*।

[xxx] राजबली पाण्डेय, *प्राचीन भारत,* पूर्वोद्धृत, पृ .*389*।

[xxxi] आरशर्मा .एस ., *प्राचीन भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास,* पूर्वोद्धृत, पृ .*271*।

[xxxii] मनुस्मृति, अध्याय *7*, श्लोक *129;* पण्डित हरगोविन्द शास्त्री (अनुवादक), *मनुस्मृति,* चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, *2018*, पृ .*432*।

[xxxiii] उपेन्द्र सिंह, *प्राचीन एवं प्रारम्भिक मध्यकालीन भारत का इतिहास,* पूर्वोद्धृत, पृ .*447*।

[xxxiv] विमलचन्द्र पाण्डेय, *प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास,* पूर्वोद्धृत, पृ . *294*।

[xxxv] जूनागढ़ अभिलेख, रूद्रदामन; वासुदेव उपाध्याय, *प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन,* बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, *1991*, पृ .*178*।

[xxxvi] सत्यकेतु विद्यालंकार, *प्राचीन भारत का धार्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक जीवन,* श्री सरस्वती सदन, नई दिल्ली, *2001*, पृ .*226*।

[xxxvii] जूनागढ़ अभिलेख, रूद्रदामन; वासुदेव उपाध्याय, *प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन,* पूर्वोद्धृत, पृ .*178*।

[xxxviii] याज्ञवल्क्य स्मृति, अध्याय *2;* उमेशचन्द्र पाण्डेय (अनुवादक), चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, *2016*, पृ .*201*।

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

[xxxix] पतंजलि, *महाभाष्य;* वासुदेवशरण अग्रवाल (.सम्पा), मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, *1967,* पृ *.219*।

[xl] उपेन्द्र सिंह, *प्राचीन एवं प्रारम्भिक मध्यकालीन भारत का इतिहास,* पूर्वोद्धृत, पृ *.468*।

[xli] विमलचन्द्र पाण्डेय, *प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास,* पूर्वोद्धृत, पृ *.319*

[xlii] डी .डी .कौसाम्बी, *प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता,* पूर्वोद्धृत, पृ *.302*।

[xliii] आर .सी .मजूमदार, *प्राचीन भारत,* मोतीलाल बनारसीदास, पूर्वोद्धृत, पृ *.374*।

[xliv] उपेन्द्र सिंह, *प्राचीन एवं प्रारम्भिक मध्यकालीन भारत का इतिहास,* पूर्वोद्धृत, पृ *.479*।

[xlv] विमलचन्द्र पाण्डेय, *प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास,* पूर्वोद्धृत, पृ *.328*।

[xlvi] हेमचन्द्र रायचौधरी, *प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास,* पूर्वोद्धृत, पृ *.388*।

[xlvii] सत्यकेतु विद्यालंकार, *प्राचीन भारत का धार्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक जीवन,* पूर्वोद्धृत, *.258*।